Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 3, Issue 6, April-2012, ISSN 2230-7540

विभिन्न रसों का अर्न्तभाव तथा भक्ति

Mamta

Research Scholar, Singhania University, Pacheri Bari, Jhunjhunu, Rajasthan

----------♦----------

रसों का अन्तर्भाव आदि

स्थायीभावों के किसी विशेष लक्षण अथवा रसों के किसी भाव की समानता के आधार पर प्राय: रसों का एक दूसरे में अंतर्भाव करने, किसी स्थायीभाव का तिरस्कार करके नवीन स्थायी मानने की प्रवृत्ति भी यदा-कदा दिखाई पड़ी है। यथा, शांत रस और दयावीर तथा वीभत्स में से दयावीर का शांत में अंतर्भाव तथा बीभत्स स्थायी जुगुप्सा को शांत का स्थायी माना गया है। "नागानंद" नाटक को कोई शांत का और कोई दयावीर रस का नाटक मानता है। किंतु यदि शांत के तत्वज्ञानमूलक विराम और दयावीर के करुणाजनित उत्साह पर ध्यान दिया जाए तो दोनों में भिन्नता दिखाई देगी। इसी प्रकार जुगुप्सा में जो विकर्षण है वह शांत में नहीं रहता। शांत राग-द्वेष दोनों से परे समावस्था और तत्वज्ञानसंमिलित रस है जिसमें जुगुप्सा संचारी मात्र बन सकती है। ठीक ऐसे जैसे करुण में भी सहानुभूति का संचार रहता है और दयावीर में भी, किंतु करुण में शोक की स्थिति है और दयावीर में सहानुभूतिप्रेरित आत्मशक्तिसंभूत आनंदरूप उत्साह की। अथवा, जैसे रौद्र और युद्धवीर दोनों का आलंबन शत्रु है, अत: दोनों में क्रोध की मात्रा रहती है, परंतु रौद्र में रहनेवाली प्रमोदप्रतिकूल तीक्ष्णता और अविवेक और युद्धवीर में उत्सह की उत्फुल्लता और विवेक रहता है। क्रोध में शत्रुविनाश में प्रतिशोध की भावना रहती है और वीर में धैर्य और उदारता। अतएव इनका परस्पर अंतर्भाव संभव नहीं। इसी प्रकार "अंमर्ष" को वीर का स्थायी मानना भी उचित नहीं, क्योंकि अमर्ष निंदा, अपमान या आक्षेपादि के कारण चित्त के अभिनिवेश या स्वाभिमानावबोध के रूप में प्रकट होता है, किंतु वीररस के दयावीर, दानवीर, तथा धर्मवीर नामक भेदों में इस प्रकार की भावना नहीं रहती।

मेघदूतम्

महाकवि कालिदास द्वारा रचित विख्यात दूतकाव्य है। इसमें एक यक्ष की कथा है जिसे कुबेर अल्कापुरी से निष्कासित कर देता है. निष्कासित यक्ष रामगिरि पर्वत पर निवास करता है. वर्षा ऋतु में उसे अपनी प्रेमिका की याद सताने लगती है. कामार्त यक्ष सोचता है कि किसी भी तरह से उसका अल्कापुरी लौटना संभव नहीं है, इसलिए वह प्रेमिका तक अपना संदेश दूत के माध्यम से भेजने का निश्चय करता है. अकेलेपन का जीवन गुजार रहे यक्ष को कोई संदेशवाहक भी नहीं मिलता है. इसलिए उसने मेघ के माध्यम से अपना संदेश विरहाकुल प्रेमिका तक भेजने की बात सोची. इस प्रकार आषाढ़ के प्रथम दिन आकाश पर उमड़ते मेघों ने कालिदास की कल्पना के साथ मिलकर एक अनन्य कृति की रचना कर दी।[1]

"मेघदूत" की लोकप्रियता भारतीय साहित्य में प्राचीन काल से ही रही है। जहाँ एक ओर प्रसिद्ध टीकाकारों ने इसपर टीकाएँ लिखी हैं, वहाँ अनेक संस्कृत कवियों ने इससे प्रेरित होकर अथवा इसको आधार बनाकर कई दूतकाव्य लिखे। भावना और कल्पना का जो उदात्त प्रसार मेघदूत में उपलब्ध है, वह भारतीय साहित्य में अन्यत्र विरल है। नागार्जुन ने मेघदूत के हिन्दी अनुवाद की भूमिका में इसे हिन्दी वांग्मय का अनुपम अंश बताया है।[2] मेघदूतम् काव्य दो खंडों में विभक्त है। पूर्वमेघ में यक्ष बादल को रामगिरि से अलकापुरी तक के रास्ते का विवरण देता है और उत्तरमेघ में यक्ष का यह प्रसिद्ध विरहदग्ध संदेश है, जिसे कालिदास ने प्रेमीहृदय की भावना को उड़ेल दिया है। कुछ विद्वानों ने इस कृति को कवि की व्यक्तिव्यंजक (आत्मपरक) रचना माना है। "मेघदूत" में लगभग ११५ पद्य हैं, यद्यपि अलग अलग संस्करणों में इन पद्यों की संख्या हेर-फेर से कुछ अधिक भी मिलती है। डॉ. एस. के. दे के मतानुसार मूल "मेघदूत" में इससे भी कम १११ पद्य हैं, शेष बाद के प्रक्षेप जान पड़ते हैं।

अन्य दूतकाव्य

महाभारत के "नलोपाख्यान" नामक आख्यान में नल तथा दमयंती द्वारा इसको दूत बनाकर परस्पर संदश प्रेषण की जो कथा आई है, वह भी दूतकाव्य की परंपरा का ही अनुसरण है। कवि जिनसे (९वीं शती

ईसवी) "मेघदूत" की तरह ही मंदाक्रांता छंद में तीर्थकर पार्श्वनाथ के जीवन से संबद्ध चार सर्गों का एक काव्य "पार्श्वाभ्युदय" लिखा जिसमें मेघ के दौत्य के रूप में मेघदूत के शताधिक पद्य समाविष्ट हैं। १५वीं शताब्दी में "नेमिनाथ" और "राजमती" वाले प्रसंग को लेकर "विक्रम" कवि ने "नेमिदूत" काव्य लिखा, जिसमें मेघूदत" के १२५ पद्यों के अंतिम चरणों को समस्या बनाकर कवि ने नेमिनाथ द्वारा परित्यक्त राजमती के विरह का वर्णन किया है। इसी काल में एक अन्य जैन कवि "चरित्रसुंदर गणि ने शांतरसपरक जैन काव्य "शीलदूत" की रचना की। इन दो कृतियों के अतिरिक्त विमलकीर्ति का "चंद्रदूत", अज्ञात कवि का "चेतोदूत" और मेघविजय उपाध्याय का "मेघदूत समस्या" इस परंपरा के अन्य जैन काव्य हैं।

कालिदास की रचनाओं में हमारे लिए सौंदर्य के क्षण, साहसिक घटनाएं, त्याग के दृश्य और मानव मन की नित-नित बदलती मनः स्थितियों के रूप संरक्षित हैं। उनकी कृतियां मानव प्रारब्ध के वर्णनातीत चित्रण के लिए सदैव पढ़ी जाती रहेंगी क्योंकि कोई महान् कवि ही ऐसी प्रस्तुतियां दे सकता है। उनकी अनेक पंक्तियां संस्कृत में सूक्तियां बन गई हैं। उनकी मान्यता है कि हिमालय क्षेत्र में विकसित संस्कृति विश्व की संस्कृतियों की मापदण्ड हो सकती है। यह संस्कृति मूलतः आध्यात्मिक है। हम सभी सामान्यतः समय-चक्र में कैद हैं

और इसीलिए हम अपने अस्तित्व की संकीर्ण सीमाओं में घिरे हैं। अतः हमारा उद्देश्य अपने मोहजालों से मुक्त होकर चेतना के उस सत्य को पाने का होना चाहिए जो देश-काल से परे है जो अजन्मा, चरम और कालातीत है। हम इसका चिंतन नहीं कर सकते, इसे वर्गों, आकारों और शब्दों में विभाजित नहीं कर सकते। इस चरम सत्य की अनुभूति का ज्ञान ही मानव का उद्देश्य है। रघुवंश के इन शब्दों को देखिए - 'ब्रह्माभूयम् गतिम् अजागम्।' ज्ञानीपुरुष कालातीत परम सत्य के जीवन को प्राप्त होते हैं।

वह जो चरम सत्य है सभी अज्ञान से परे है और वह आत्मा और पदार्थ के विभाजन से ऊपर है। वह सर्वज्ञ, सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान है। वह अपने को तीन रूपों में व्यक्त करता है (त्रिमूर्ति) ब्रह्मा, विष्णु और शिव – कर्त्ता, पालक तथा संहारक। ये देव समाज पद वाले हैं आम जीवन में कालिदास शिवतंत्र के उपासक हैं। तीनों 1.अभिज्ञान शाकुन्तला, 1.17 नाटकों – अभिज्ञान शाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय, मालविकाग्निमित्र – की आरम्भिक प्रार्थनाओं से प्रकट होता है कि कालिदास शिव-उपासक थे। देखिए रघुवंश के आरम्भिक श्लोक में :

जगतः पितरौ वन्दे पार्वती-परमेश्वरौ।

यद्यपि कालिदास परमात्मा के शिव रूप के उपासक हैं तथापि उनका दृष्टिकोण किसी भी प्रकार संकीर्ण नहीं है। परम्परागत हिन्दू धर्म के प्रति उनका दृष्टिकोण उदार है। दूसरों के विश्वासों को उन्होंने सम्मान की दृष्टि से देखा। कालिदास की सभी धर्मों के प्रति सहानुभूति है और वे दुराग्रह और धर्मान्धता से मुक्त हैं। कोई भी व्यक्ति वह मार्ग चुन सकता है जो अच्छा लगता है क्योंकि अन्ततः ईश्वर के विभिन्न रूप एक ही ईश्वर के विभिन्न रूप हैं जो सभी रूपों में निराकार है।

कालिदास पुनर्जन्म के सिद्धान्त को मानते हैं। यह जीवन में पूर्णता के मार्ग की एक अवस्था है। जैसे हमारा वर्तमान जीवन पूर्व कर्मों का फल है वैसे ही हम इस जन्म में प्रयासों से अपना भविष्य सुधार सकते हैं। विश्व पर सदाचार का शासन है। विजय अन्ततः अच्छाई की होगी। यदि कालिदास की रचनाएं दुखान्त नहीं हैं तो उसका कारण यह कि वे सामंजस्य और शालीनता के अन्तिम सत्य को स्वीकारते हैं। इस मान्यता के अन्तर्गत वे अधिकांश स्त्री-पुरुषों के दुःख-दर्दों के प्रति हमारी सहानुभूति को मोड़ देते हैं।

कालिदास की रचनाओं से इस गलत धारणा का निराकरण हो जाता है कि हिन्दू मस्तिष्क ने ज्ञान-ध्यान पर अधिक ध्यान दिया और सांसारिक दुःख-दर्दों की उन्होंने अवहेलना की। कालिदास के अनुभव का क्षेत्र व्यापक था। उन्होंने जीवन, लोक, चित्रों और फूलों में समान आनन्द लिया। उन्होंने मानव को सृष्टि (ब्रह्माण्ड) और धर्म की शक्तियों से अलग करके नहीं देखा। उन्हें मानव के सभी प्रकार के दुःखों, आकांक्षाओं, क्षणिक खुशियों और अन्तहीन आशाओं का ज्ञान था।

वे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष – मानव जीवन के चार पुरुषार्थों में सामंजस्य के पोषक थे। अर्थ पर, जिसमें राजनीति और कला भी सम्मिलित है धर्म का शासन रहना चाहिए। साध्य और साधन में परस्पर सह-संबंध है। जीवन वैध (मान्य) संबंधों से ही जीने योग्य रहता है। इन संबंधों को स्वच्छ और उज्जवल बनाना ही कवि का उद्देश्य था।

इतिहास प्राकृतिक तथ्य न होकर नैतिक सत्य है। यह काल-क्रम का लेखा-जोखा मात्र नहीं है। इसका सार अध्यात्म में निहित है जो आगे की पीढ़ियों को ज्ञान प्रदान करता है। इतिहासकारों को अज्ञान को भेद कर उस आन्तरिक नैतिक गतिशीलता को आत्मसात करना चाहिए। इतिहास मानव की नैतिक इच्छा का फल है जिसकी अभिव्यक्तियां स्वतंत्रता और सृजन हैं।

रघुवंश के राजा जन्म से ही निष्कलंक थे। धरती से लेकर समुद्र तक (आसमुद्रक्षितिसानाम्) इनका व्यापक क्षेत्र में शासन था। इन्होंने धन का संग्रह दान के लिए किया, सत्य के लिए चुने हुए शब्द कहे, विजय की आकांक्षा यश के लिए की और गृहस्थ जीवन पुत्रेष्णा के लिए रखा। बचपन में शिक्षा, युवावस्था में जीवन के सुखभोग, वृद्धावस्था में आध्यात्मिक जीवन और अन्त में योग या ध्यान द्वारा शरीर का त्याग किया।

राजाओं ने राजस्व की वसूली जन-कल्याण के लिए की, 'प्रजानाम् एवं भूत्यार्थम्' जैसे सूर्य जल लेता है और उसे सहस्रगुणा करके लौटा देता है। राजाओं का लक्ष्य धर्म और न्याय होना चाहिए। राजा ही प्रजा का सच्चा पिता है, वह उन्हें शिक्षा देता है, उनकी रक्षा करता है और उन्हें जीविका प्रदान करता है जबकि उनके माता-पिता केवल उनके भौतिक जन्म के हेतु हैं। राजा अज के राज्य में प्रत्येक व्यक्ति यही मानता था कि राजा उनका व्यक्तिगत मित्र है।

शाकुन्तलं में तपस्वी राजा से कहता है : 'आपके शस्त्र त्रस्त और पीड़ितों की रक्षा के लिए हैं न कि निर्दोषों पर प्रहार के लिए।' 'आर्त त्राणाय वाह शस्त्रम् न प्रहारतुम् अनगसि।' दुष्यन्त एवं शकुन्तला का पुत्र भरत, जिसके नाम पर इस देश का नाम भारत पड़ा है, सर्वदमन भी कहलाता है – यह केवल इसलिए नहीं कि उसने केवल भयानक वन्य पशुओं पर विजयी पायी अपितु उसमें आत्मसंयम भी था। राजा के लिए आत्मसंयम भी अनिवार्य है।

रघुवंश में अग्निवर्ण दुराचारी हो जाता है। उसके अन्तःपुर में इतनी अधिक नारियां हैं कि वह उनका सही नाम तक नहीं जान पाता। उसे क्षय हो जाता है और उस अवस्था में भी भोग का आनन्द नहीं छोड़ पाता और उसकी मृत्यु हो जाती है। शालीन मानव-जीवन के लिए संयम अनिवार्य है। कालिदास कहते है : 'हे कल्याणी, खान से निकलने के उपरांत भी कोई भी रत्न स्वर्ण में नहीं जड़ा जाता, जब तक उसे तराशा नहीं जाता।'

यद्यपि कालिदास की कृतियों में तप को भव्यता प्रदान की गई है और साधु और तपस्वियों को पूजनीय रूप में प्रस्तुत किया गया है, तथापि कहीं भी भिक्षापात्र की सराहना नहीं की गई।

धर्म के नियम जड़ एवं अपरिवर्तनीय नहीं हैं। परम्परा को अपनी अन्तर्दृष्टि और ज्ञान से सही अर्थ दिया जाना चाहिए। परम्परा और व्यक्तिगत अनुभव एक-दूसरे के पूरक हैं। जहां हमें एक ओर अतीत विरासत में मिला है वहीं हम दूसरी ओर भविष्य के न्यासधारी (ट्रस्टी) हैं। अपने अन्तिम विश्लेषण में प्रत्येक को सही आचरण के लिए अपने अन्तःकरण में झांकना चाहिए। भगवतगीता के आरम्भिक अध्याय में जब अर्जुन क्षत्रिय होने के नाते समाज द्वारा आरोपित युद्ध करने के अपने दायित्व से मना करते हैं और जब सुकरात कहते हैं, 'एथेंसवासियों ! मैं ईश्वर की आज्ञा का पालन करूंगा, तुम्हारी आज्ञा का नहीं।' तो वे ऐसा अपनी अर्न्तात्मा के निर्देश पर कहते हैं न कि किसी बंधे-बंधाए नियमों के अनुपालन के कारण। आरम्भिक वैदिक साहित्य में जड़-चेतन की एकरूपता का निरूपण है और अनेक वैदिक देवी-देवता प्रकृति के प्रमुख पक्षों का प्रतिनिधित्व करते हैं। आत्मज्ञान की खोज में प्रकृति की शरण में जाने, हिमश्रृंगों पर जाने या तपोवन में जाने का शिकार बहुत प्राचीन काल से हमारे यहां विद्यमान रहा है। मानव के रूप में हमारी जड़े प्रकृति में हैं और हम नाना रुपों में इसे जीवन में देखते हैं। रात और दिन, ऋतु-परिवर्तन – ये सब मानव-मन के परिवर्तन, विविधता और चंचलता के प्रतीक हैं। कालिदास के लिए प्रकृति यन्त्रवत और निर्जीव नहीं है। इसमें एक संगीत है। कालिदास के पात्र पेड़-पौधों, पर्वतों तथा नदियों के प्रति संवेदनशील हैं और पशुओं के प्रति उनमें भ्रात भावना है। हमें उनकी कृतियों में खिले हुए फूल, उड़ते पक्षी और उछलते-कूदते पशुओं के वर्मन दिखाई देते हैं। रघुवंश में हमें गाय के प्रेम का अनुपम वर्णन मिलता है। ऋतुसंहार में षट ऋतुओं का हृदयस्पर्शी विवरण है। ये विवरण केवल कालिदास के प्राकृतिक-सौन्दर्य के प्रति उनकी दृष्टि को नहीं अपितु मानव-मन के विविध रूपों और आकांक्षाओं की समझ को भी प्रकट करते हैं। कालिदास के लिए नदियों, पर्वतों, वन-वृक्षों में चेतन व्यक्तित्व है जैसा कि पशुओं और देवों में है।

शाकुन्तला प्रकृति की कन्या है। जब उसे उसकी अमानुषी मां मेनका ने त्याग दिया तो आकाशगामी पक्षियों ने उसे उठाया और तब तक उसका पालन-पोषण किया जब तक कि कण्ठ ऋषि आश्रम में उसे नहीं ले गए। शकुन्तला ने पौधों को सींचा, उन्हें अपने साथ-साथ बढ़ते देखा और जब उनके ऊपर फल-फूल आए तो ऐसे अवसरों को उसने उत्सवों की भांति मनाया। शाकुन्तला के विवाह के अवसर पर वृक्षों ने उपहार दिए, वनदेवियों ने पुष्प-वर्षा की, कोयलों ने प्रसन्नता के गीत गाए। शकुंतला की विदाई के समय आश्रम दुःख से भर उठा। मृगों के मुख से चारा छूट कर गिर पड़ा, मयूरों का नृत्य रुक गया और लताओं ने अपने पत्रों के रूप में अश्रु गिराए।

सीता के परित्याग के समय मयूरों ने अपना नृत्य एकदम बन्द कर दिया, वृक्षों ने अपने पुष्प झाड़ दिए और मृगियों ने आधे चबाए हुए दूर्वादलों को मुंह से गिरा दिया।

कालिदास कोई विषय चुनते हैं और आँख में उसका एक सजीव चित्र उतार लेते हैं। मानस-चित्रों की रचना में वे बेजोड़ हैं। कालिदास का प्रकृति का ज्ञान यथार्थ ही नहीं था अपितु सहानुभूति भी था। उनकी दृष्टि कल्पना से संयुक्त है। कोई भी व्यक्ति तब तक पूर्णतः महिमामण्डित नहीं हो सकता जब तक कि वह मानव जीवन से इतर जीवन की महिमा और मूल्यों को नहीं जानता। हमें जीवन के समग्र रूपों के प्रति संवेदना विकसित करनी चाहिए। सृष्टि केवल मनुष्य के लिए नहीं रची गई है।

पुरुष और नारी के प्रेम ने कालिदास को आकर्षित किया और प्रेम के विविध रूपों के चित्रण में उन्होंने अपनी समृद्ध कल्पना का खुलकर उपयोग किया है। इसमें उनकी कोई सीमाएं नहीं हैं। उनकी नारियों में पुरुषों की अपेक्षा अधिक आकर्षण है क्योंकि उनमें कालातीत और सार्वभौम गुण हैं जबकि पुरुष पात्र संवेदना शून्य और अस्थिर बुद्धि हैं। उनकी संवेदना सतही है जबकि नारी का दुःख-दर्द अन्तरतम का है।

पुरुष में स्पर्धा की भावना और स्वाभिमान उसके कार्यालय, कारखाने या रणक्षेत्र में उपयोगी हो सकते हैं पर उनकी तुलना नारी के सुसंस्कार, सौन्दर्य और शालीनता के गुणों से नहीं हो सकती। अपने व्यवस्था और सामंजस्य के प्रेम के कारण नारी परम्परा (संस्कृति) को जीवित रखती है।

जब कालिदास नारी के सौन्दर्य का वर्णन करते हैं तो वे शास्त्रीय शैली को अपनाते हैं और ऐसा करते समय वे अपने विवरणों के वासनाजन्य होने या अतिविस्तृत हो जाने का खतरा मोल लेते हैं। मेघदूत में 'मेघ' को 'यक्ष' अपनी पत्नी का विवरण (हुलिया) इस प्रकार देता है :

'नारियों में वह ऐसी है मानो विधाता ने उसका रचना सर्वप्रथम की है, पतली और गोरी है, दांत पतले और सुन्दर हैं। नीचे के ओष्ठ पके बिम्ब फल (कुंदरू) की भांति लाल है। कमर पतली है। आँखें उसकी चकित हिरणी जैसी हैं। नाभि गहरी है तथा चाल उसकी नितम्बभार से मन्द और स्तनभार से आगे की ओर झुकी हुई है।'

कालिदास द्वारा प्रस्तुत की गई नारियों में हमें अनेक रोचक प्रकार दिखाई देते हैं। उनमें से अनेक को समाज के परम्परागत बहानों और सफाई की आवश्यकता नहीं है। उनके द्वन्द्व और तनावों को सामंजस्य की आवश्यकता थी। पुरुष संदेहमुक्त अनुभव करते थे और वे पूर्ण सुरक्षित थे। बहुविवाह उनके लिए आम बात थी, परन्तु कालिदास की नारियां कल्पनाशील और चतुर हैं अतः वे संदेह और अनिश्चय के घेरे में आ जाती हैं। वे सामान्यतः अस्थिर नहीं हैं परन्तु वे विश्वसनीय, निष्ठावान तथा प्रेममय हैं।

प्रेम के लिए झेली गई कठिनाइयां और यातनाएं प्रेम को और गहन बनाती हैं। मेघदूत में अजविलाप और रतिविलाप में वियोग की करुणामय मार्मिक अभिव्यक्ति है। प्रेम का संयोग रूप विक्रमोर्वशीय में है।

मालविकाग्निमित्र में रानी को धरिणी कहा गया है क्योंकि वह सब कुछ सहती है। उसमें गरिमा और सहिष्णुता है। इरावती कामुक, अविवेकी, शंकालु, अतृप्त और मनमानी करने वाली है। जब राजा ने उसे छोड़कर मालविका को अपनाया तो वह कठोर शब्दों में शिकायत करती है और कटु शब्दों में राजा को फटकारती है।

मालविका के प्रति अग्निमित्र का प्रेम इन्द्रिपरक है। राजा दासी की सुन्दरता और लावण्य पर मोहित है। विक्रमोर्वशीय में पात्रों में दैवी और मानवीय गुणों का मिश्रण है। उर्वशी का चरित्र सामान्य जीवन से हटकर है। उसमें इतनी शक्ति है कि अदृश्य रूप से वह अपने प्रेमी को देख सकती है तथा उसकी बातें सुन सकती है। उसमें मातृप्रेम नहीं है क्योंकि वह अपने पति को खोने के स्थान पर अपने बच्चे का परित्याग कर देती है। उसका प्रेम स्वार्थजन्य है।

पुरुरवा भावविह्वल होकर प्रेम के गीत गाता है जिसका भावार्थ यह है कि विश्व की सत्ता उतनी आनन्ददायक नहीं जितना प्रेम आनन्ददायक है। विफल प्रेमी के लिए संसार दुःख और निराशा से भरा है और सफल प्रेमी के लिए वह सुख और आनन्द से भरा है। इस नाटक में हम प्रेम को फलीभूत होते देखते हैं। इसमें भूमि और आकाश एक होते हैं। भौतिक आकर्षण पर आधारित वासना नैतिक सौन्दर्य और आध्यात्मिक ज्ञान में परिवर्तित होती है।

'पद्मावत' में प्रेमगाथा की परंपरा पूर्ण प्रौढ़ता को प्राप्त मिलती है। यह उस परंपरा में सबसे अधिक प्रसिद्ध ग्रंथ है। इसकी कहानियों में भी विशेषता है। इसमें इतिहास और कल्पना का योग है। चित्तौर की महारानी पद्मिनी या पद्मावती का इतिहास हिंदू हृदय के मर्म को स्पर्श करनेवाला है। जायसी ने यद्यपि इतिहास प्रसिद्ध नायक और नायिका ली है पर उन्होंने अपनी कहानी का रूप वही रखा है जो कल्पना के उत्कर्ष द्वारा साधारण जनता के हृदय में प्रतिष्ठित था। इस रूप में इस कहानी का पूर्वार्द्ध तो बिलकुल कल्पित है, और उत्तरार्द्ध ऐतिहासिक आधार पर है। पद्मावती कथा संक्षेप में इस प्रकार है -

सिंहल द्वीप के राजा गंधर्वसेन की कन्या पद्मावती रूप और गुण में

जगत में अद्‌वितीय थी। उसके योग्य वर कहीं न मिलता था। उसके पास हीरामन नाम का एक सूआ था जिसका वर्ण सोने के समान था और जो पूरा वाचाल और पंडित था। एक दिन वह पद्मावती से उसके वर न मिलने के विषय में कुछ कह रहा था कि राजा ने सुन लिया और बहुत कोप किया। सूआ राजा के डर से एक दिन उड़ गया। पद्मावती ने सुन कर बहुत विलाप किया।

सूआ वन में उड़ता उड़ता एक बहेलिया के हाथ में पड़ गया जिसने बाजार में ला कर उसे चित्तौर के एक ब्राह्मण के हाथ बेच दिया। उस ब्राह्मण को एक लाख दे कर चित्तौर के राजा रत्नसेन ने उसे ले लिया। धीरे-धीरे रत्नसेन उसे बहुत चाहने लगा। एक दिन जब राजा शिकार को गया तब उसकी रानी नागमती ने, जिसे अपने रूप पर बड़ा गर्व था, आ कर सूए से पूछा कि 'संसार में मेरे समान सुंदरी भी कहीं है?' इस पर सूआ हँसा और उसने सिंहल की पद्मिनी का वर्णन कर के कहा कि उसमें और तुममें दिन और अंधेरी रात का अंतर है। रानी ने इस भय से कि कहीं यह सूआ राजा से भी न पद्मिनी के रूप की प्रशंसा करे, उसे मारने की आज्ञा दे दी। पर चेरी ने उसे राजा के भय से मारा नहीं, अपने घर छिपा रखा। लौटने पर जब सूए के बिना राजा रत्नसेन बहुत व्याकुल और क्रुद्ध हुआ तब सूआ लाया गया और उसने सारी व्यवस्था कह सुनाई। पद्मिनी के रूप का वर्णन सुन कर राजा मूर्च्छित हो गया और अंत में वियोग से व्याकुल हो कर उसकी खोज में घर से जोगी हो कर निकल पड़ा। उसके आगे-आगे राह दिखाने वाला वही हीरामन सूआ था और साथ में सोलह हजार कुँवर जोगियों के वेश में थे।

कलिंग से जोगियों का यह दल बहुत से जहाजों में सवार हो कर सिंहल की ओर चला और अनेक कष्ट झेलने के उपरांत सिंहल पहुँचा। वहाँ पहुँचने पर राजा तो शिव के एक मंदिर में जोगियों के साथ बैठ कर पद्मावती का ध्यान और जप करने लगा और हीरामन सूए ने जा कर पद्मावती से यह सब हाल कहा। राजा के प्रेम की सत्यता के प्रभाव से पद्मावती प्रेम में विकल हुई। श्री पंचमी के दिन पद्मावती शिवपूजन के लिए उस मंदिर में गई, पर राजा उसके रूप को देखते ही मूर्च्छित हो गया, उसका दर्शन अच्छी तरह न कर सका। जागने पर राजा बहुत अधीर हुआ। इस पर पद्मावती ने कहला भेजा कि समय पर तो तुम चूक गए; अब तो इस दुर्गम सिंहलगढ़ पर चढ़ सको तभी मुझे देख सकते हो। शिव से सिद्धि प्राप्त कर राजा रात को जोगियों सहित गढ़ में घुसने लगा पर सवेरा हो गया और पकड़ा गया। राजा गंधर्वसेन की आज्ञा से रत्नसेन को सूली देने ले जा रहे थे कि इतने में सोलह हजार जोगियों ने गढ़ को घेर लिया। महादेव, हनुमान, आदि सारे देवता जोगियों की सहायता के लिए आ गए। गंधर्वसेन की सारी सेना हार गई। अंत में जोगियों के बीच शिव को पहचान कर गंधर्वसेन उनके पैरों पर गिर पड़ा और बोला कि 'पद्मावती आपकी है जिसको चाहे दीजिए।' इस प्रकार रत्नसेन के साथ पद्मावती का विवाह हो गया और दोनों चित्तौरगढ़ आ गए।

रत्नसेन की सभा में राघवचेतन नामक एक पंडित था जिसे यक्षिणी सिद्ध थी। और पंडितों को नीचा दिखाने के लिए उसने एक दिन प्रतिपदा को द्‌वितीया कह कर यक्षिणी के बल से चंद्रमा दिखा दिया। जब राजा को यह कार्रवाई मालूम हुई तब उसने राघवचेतन को देश से निकाल दिया। राघव राजा से बदला लेने और भारी पुरस्कार की आशा से दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन के दरबार में पहुँचा और उसने दान में पाए हुए पद्मावती के कंगन को दिखा कर उसके रूप को संसार के ऊपर बताया। अलाउद्दीन ने पद्मिनी को भेज देने के लिए राजा रत्नसेन को पत्र भेजा, जिसे पढ़ कर राजा अत्यंत क्रुद्ध हुआ और लड़ाई की तैयारी करने लगा। कई वर्ष तक अलाउद्दीन चित्तौर घेरे रहा पर उसे तोड़ न सका। अंत में उसने छलपूर्वक संधि का प्रस्ताव भेजा। राजा ने उसे स्वीकार कर के बादशाह की दावत की। राजा के साथ शतरंज खेलते समय अलाउद्दीन ने पद्मिनी के रूप की एक झलक सामने रखे हुए एक दर्पण में देख पाई, जिसे देखते ही वह मूर्च्छित हो कर गिर पड़ा। प्रस्थान के दिन जब राजा बादशाह को बाहरी फाटक तक पहुँचाने गया तब अलाउद्दीन के छिपे हुए सैनिकों द्‌वारा पकड़ लिया गया और दिल्ली पहुँचाया गया।

पद्मिनी को जब यह समाचार मिला तब वह बहुत व्याकुल हुई; पर तुरंत एक वीर क्षत्राणी के समान अपने पति के उद्धार का उपाए सोचने लगी। गोरा, बादल नामक दो वीर क्षत्रिय सरदार 700 पालकियों में सशस्त्र सैनिक छिपा कर दिल्ली पहुँचे और बादशाह के पास यह संवाद भेजा कि पद्मिनी अपने पति से थोड़ी देर मिल कर तब आपके हरम में जायगी। आज्ञा मिलते ही एक ढकी पालकी राजा के कोठरी के पास रखी गई और उसमें से एक लोहार ने निकल कर राजा की बेड़ियाँ काट दीं। रत्नसेन पहले से ही तैयार एक घोड़े पर सवार हो कर निकल आए। शाही सेना पीछे आते देख कर वृद्ध गोरा तो कुछ सिपाहियों के साथ उस सेना को रोकता रहा और बादल रत्नसेन को ले कर चित्तौर पहुँच गया। चित्तौर आने पर पद्मिनी ने रत्नसेन से कुंभलनेर के राजा देवपाल द्‌वारा दूती भेजने की बात कही जिसे सुनते ही राजा रत्नसेन ने कुंभलनेर को जा घेरा। लड़ाई में देवपाल और रत्नसेन दोनों मारे गए।

रत्नसेन का शव चित्तौर लाया गया। उसकी दोनों रानियाँ नागमती और पद्मावती हँसते-हँसते पति के शव के साथ चिता में बैठ गईं। पीछे जब सेना सहित अलाउद्दीन चित्तौर में पहुँचा तब वहाँ राख के ढेर के सिवा कुछ न मिला।

जैसा कि कहा जा चुका है प्रेमगाथा की परंपरा में पद्मावत सबसे प्रौढ़ और सरस है। प्रेममार्गी सूफी कवियों की और कथाओं से इस कथा में यह विशेषता है कि इसके ब्योरों से भी साधना के मार्ग, उसकी कठिनाइयों और सिद्धि के स्वरूप आदि की जगह-जगह व्यंजना होती है, जैसा कि कवि ने स्वयं ग्रंथ की समाप्ति पर कहा है -

तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल, बुधि, पदमिनी चीन्हा॥

गुरु सुआ जेइ पंथ देखावा। बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा॥

नागमती यह दुनिया धंधा। बाँचा सोइ न एहि चित बंधा ॥

राघवदूत सोई सैतानू। माया अलाउदीं सुलतानू॥

यद्यपि पद्मावत की रचना संस्कृत प्रबंधकाव्यों की सर्गबद्ध पद्धति पर नहीं है, फारसी की मसनवी शैली पर है, पर श्रृंगार वीर आदि के वर्णन चली आती हुई भारतीय काव्यपरंपरा के अनुसार ही है। इसका पूर्वार्द्ध तो एकांत प्रेममार्ग का ही आभास देता है, पर उत्तरार्द्ध में लोकपक्ष का भी विधान है। पद्मिनी के रूप का जो वर्णन जायसी ने किया है वह पाठक को सौंदर्य की लोकोत्तर भावना में मग्न करने वाला है। अनेक प्रकार के अलंकारों की योजना उसमें पाई जाती है। कुछ पद्य देखिए -

सरवर तीर पदमिनी आई। खोंपा छोरि केस मुकलाई॥

ससि मुख, अंग मलयगिरि बासा। नागिन झाँपि लीन्ह चहुँ पासा॥

ओनई घटा परी जग छाँहा। ससि के सरन लीन्ह जनु राहा॥

भूलि चकोर दीठि मुख लावा। मेघ घटा महँ चंद देखावा॥

पद्मिनी के रूप के वर्णन में जायसी ने कहीं-कहीं उस अनंत सौंदर्य की ओर, जिसके विरह में यह सारी सृष्टि व्याकुल सी है, बड़े सुंदर संकेत किए है। -

बरुनी का बरनौ इमि बनी। साधे बान जानु दुइ अनी॥

उन बानन्ह अस को जो न मारा। बेधि रहा सगरौ संसारा॥

गगन नखत जो जाहिं न गने। वे सब बान ओहि कै हने॥

धरती बान बेधि सब राखी। साखी ठाढ़ देहिं सब साखी॥

रोवँ रोवँ मानुष तन ठाढ़े। सूतहि सूत बेध अस गाढ़े॥

बरुनि बान अस ओपहँ, बेधे रन बन ढाख॥

सौजहिं तन सब रोवाँ, पंखिहि तन सब पाँख॥

इसी प्रकार योगी रत्नसेन के कठिन मार्ग के वर्णन में साधक के मार्ग के विघ्नों (काम क्रोध आदि विकारों) की व्यंजना की है -

ओहि मिलान जौ पहुँचै कोई। तब हम कहब पुरुष भल होई॥

है आगे परबत कै बाटा। विषय पहार अगम सुठि घाटा॥

बिच बिच नदी खोह औ नारा। ठाँवहि ठाँव बैठ बटपारा॥